



अंबेडकर के राजनीतिक विचारों में मानवतावादी आधार

गुरु प्रसाद राठौर¹, डॉ रिंतु सिंह मीना²

¹ शोधार्थी (राजनीति विज्ञान), महर्षि स्कूल ऑफ ह्यूमैनिटीज, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

² सहायक प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान), महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, नोएडा, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर का राजनीतिक चिंतन भारतीय समाज की उन संरचनात्मक विषमताओं के विरुद्ध विकसित हुआ, जिन्होंने लंबे समय तक व्यक्ति की गरिमा, स्वतंत्रता और समान अवसरों को सीमित रखा। उनके विचारों का मूल उद्देश्य केवल राजनीतिक सत्ता में परिवर्तन करना नहीं था, बल्कि ऐसी सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण करना था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अवसर प्राप्त हो। अंबेडकर के लिए स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व परस्पर संबद्ध मूल्य थे तथा लोकतंत्र की सफलता इन्हीं के व्यावहारिक समन्वय पर निर्भर करती है (Ambedkar, 1945)।

उनके राजनीतिक दर्शन में मानवतावादी दृष्टि विशेष रूप से सामाजिक न्याय, नागरिक स्वतंत्रता, संवैधानिक अधिकार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के संदर्भ में दिखाई देती है। उन्होंने जाति-व्यवस्था को केवल सामाजिक विभाजन नहीं, बल्कि मानवीय संबंधों को असमान बनाने वाली व्यवस्था के रूप में देखा और इसके उन्मूलन को लोकतांत्रिक समाज की आवश्यक शर्त माना (Ambedkar, 1936)। संविधान-निर्माण के संदर्भ में भी उनकी प्राथमिकता व्यक्ति के अधिकारों की सुरक्षा तथा राज्य-सत्ता को संवैधानिक मर्यादाओं में रखने की थी। उनका लोकतंत्र संबंधों में समानता और सामाजिक उत्तरदायित्व पर आधारित व्यवस्था था, न कि केवल चुनावों तक सीमित शासन-पद्धति (Ambedkar, 1949)।

यह शोध-पत्र अंबेडकर के राजनीतिक चिंतन में निहित मानवतावादी तत्वों का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि सामाजिक न्याय, समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की उनकी अवधारणाएँ समकालीन लोकतांत्रिक समाज के लिए आज भी महत्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रस्तुत करती हैं।

मूल शब्द: अंबेडकर, मानवतावाद, सामाजिक न्याय, लोकतंत्र, समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, संवैधानिकता

भारतीय राजनीतिक चिंतन की परंपरा में डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर का स्थान विशिष्ट है। उनका चिंतन केवल राजनीतिक संस्थाओं, शासन-व्यवस्था अथवा सत्ता के प्रश्नों तक सीमित नहीं था, बल्कि उसके केंद्र में मनुष्य और उसकी गरिमा का प्रश्न था। उन्होंने भारतीय समाज की उन सामाजिक संरचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन किया, जिनके कारण बड़ी संख्या में लोगों को समान नागरिक अधिकारों, शिक्षा, संसाधनों और सम्मानपूर्ण जीवन से वंचित रहना पड़ा। इस दृष्टि से अंबेडकर का राजनीतिक दर्शन सामाजिक यथार्थ से गहराई से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। उनके लिए राजनीतिक स्वतंत्रता तभी सार्थक हो सकती थी, जब समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक और आर्थिक जीवन में समान अवसर प्राप्त हों।

अंबेडकर के राजनीतिक विचारों को समझने के लिए उनके मानवतावादी दृष्टिकोण को आधार बनाना आवश्यक है। मानवतावाद का सामान्य आशय मनुष्य को उसके सम्मान, स्वतंत्रता, विवेक और अधिकारों के साथ स्वीकार करने से है। अंबेडकर के चिंतन में यह दृष्टिकोण किसी अमूर्त आदर्श के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन की वास्तविक समस्याओं के समाधान के रूप में सामने आता है। उन्होंने जाति-व्यवस्था की आलोचना करते हुए स्पष्ट किया कि जाति केवल लोगों का विभाजन नहीं करती, बल्कि मनुष्यों के बीच स्थायी ऊँच-नीच और असमानता को संस्थागत रूप देती है। उनके अनुसार जाति-व्यवस्था व्यक्ति के सामाजिक संबंधों, अवसरों और आत्मसम्मान को प्रभावित करती है (Ambedkar, 1936)।

अंबेडकर के राजनीतिक चिंतन में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को विशेष महत्व प्राप्त है। वे इन तीनों मूल्यों को अलग-अलग राजनीतिक आदर्शों के रूप में नहीं देखते थे। उनके लिए स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ तभी संभव था जब व्यक्ति को समान सामाजिक स्थिति प्राप्त हो और समाज में परस्पर बंधुत्व की

भावना विकसित हो। इसी कारण उन्होंने लोकतंत्र को केवल सरकार बनाने की प्रक्रिया या चुनाव की व्यवस्था के रूप में स्वीकार नहीं किया। उनके विचार में लोकतंत्र एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति और व्यक्ति के बीच समानता तथा पारस्परिक सम्मान का भाव मौजूद हो (Ambedkar, 1945)। सामाजिक न्याय अंबेडकर के राजनीतिक दर्शन का दूसरा महत्वपूर्ण आधार है। उन्होंने उन समुदायों के अधिकारों को राजनीतिक विमर्श के केंद्र में लाने का प्रयास किया जिन्हें पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था में हाशिए पर रखा गया था। उनके लिए प्रतिनिधित्व केवल राजनीतिक पद प्राप्त करने का साधन नहीं था, बल्कि उन समूहों को निर्णय-प्रक्रिया में भागीदारी देने का माध्यम था जिनकी आवाज लंबे समय तक प्रभावी राजनीतिक संस्थाओं तक नहीं पहुँच सकी। इस संदर्भ में उनके राजनीतिक विचारों में अधिकार, प्रतिनिधित्व और सामाजिक सुरक्षा का प्रश्न मानव-मर्यादा से जुड़ जाता है।

भारतीय संविधान के निर्माण में अंबेडकर की भूमिका ने उनके मानवतावादी राजनीतिक चिंतन को संस्थागत आधार प्रदान किया। वे ऐसी संवैधानिक व्यवस्था के समर्थक थे जिसमें नागरिकों की स्वतंत्रता और समानता सुरक्षित रहे तथा राज्य की शक्ति कानून के अधीन हो। संविधान सभा में दिए गए अपने अंतिम भाषण में उन्होंने राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक लोकतंत्र के साथ जोड़ते हुए स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को जीवन के मूल सिद्धांतों के रूप में रेखांकित किया (Ambedkar, 1949)। इससे स्पष्ट होता है कि उनके लिए संविधान केवल शासन संचालन का दस्तावेज नहीं था, बल्कि एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की दिशा में परिवर्तन का माध्यम भी था।

अंबेडकर के मानवतावादी विचारों का विस्तार महिलाओं, श्रमिकों और अन्य वंचित वर्गों के प्रश्नों तक भी दिखाई देता है। उन्होंने सामाजिक अधिकारों को व्यापक नागरिकता की अवधारणा से

जोड़ा और यह स्थापित करने का प्रयास किया कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में किसी व्यक्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि उसके अधिकारों और अवसरों का निर्धारक नहीं होनी चाहिए। उनका राजनीतिक चिंतन इसी कारण भारतीय लोकतंत्र में समान नागरिकता और सामाजिक न्याय की बहस को नई दिशा देता है।

वर्तमान समय में जब लोकतांत्रिक संस्थाओं के सामने सामाजिक असमानता, भेदभाव, प्रतिनिधित्व और अधिकारों से संबंधित अनेक प्रश्न मौजूद हैं, अंबेडकर के राजनीतिक विचारों की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है। उनके चिंतन का अध्ययन यह समझने में सहायता करता है कि लोकतंत्र की मजबूती केवल संवैधानिक संस्थाओं के संचालन से नहीं, बल्कि समाज में समानता, सम्मान और बंधुत्व की वास्तविक उपस्थिति से निर्धारित होती है। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी परिप्रेक्ष्य में अंबेडकर के राजनीतिक विचारों में निहित मानवतावादी आधार का विश्लेषण करता है तथा यह जानने का प्रयास करता है कि उनके विचार समकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक संदर्भ में किस प्रकार उपयोगी हैं।

अंबेडकर के राजनीतिक चिंतन का दार्शनिक आधार

डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर के राजनीतिक चिंतन को केवल तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया के रूप में देखना उनके विचारों की व्यापकता को सीमित करना होगा। उनके राजनीतिक दर्शन के पीछे एक स्पष्ट नैतिक और दार्शनिक दृष्टिकोण दिखाई देता है, जिसमें मनुष्य को सामाजिक व्यवस्था का केंद्र माना गया है। वे ऐसी राजनीतिक व्यवस्था के समर्थक थे जिसमें राज्य की संस्थाएँ व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता और गरिमा की रक्षा करें। उनके लिए राजनीति का उद्देश्य केवल सत्ता प्राप्त करना नहीं, बल्कि समाज में न्यायपूर्ण संबंधों का निर्माण करना था। इसी कारण उनके राजनीतिक विचारों में सामाजिक प्रश्नों और नैतिक मूल्यों का गहरा संबंध दिखाई देता है।

अंबेडकर के लिए स्वतंत्रता का अर्थ केवल औपनिवेशिक शासन से मुक्ति नहीं था। वे व्यक्ति की बौद्धिक, सामाजिक और राजनीतिक स्वतंत्रता को भी समान महत्व देते थे। यदि व्यक्ति जन्म के आधार पर निर्धारित सामाजिक स्थिति, पेशे अथवा संबंधों में बंधा हुआ है, तो राजनीतिक स्वतंत्रता उसके लिए अधूरी रह जाती है। जाति-व्यवस्था की उनकी आलोचना इसी संदर्भ में समझी जानी चाहिए। Annihilation of Caste में उन्होंने जाति को ऐसी सामाजिक संरचना के रूप में देखा जो व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक गतिशीलता को सीमित करती है (Ambedkar, 1936)। उनके अनुसार किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उसके जन्म से नहीं, बल्कि उसके मानवीय अस्तित्व और व्यक्तिगत क्षमताओं के आधार पर निर्धारित होनी चाहिए।

समानता अंबेडकर के राजनीतिक दर्शन का दूसरा प्रमुख आधार है। वे केवल कानून के समक्ष औपचारिक समानता को पर्याप्त नहीं मानते थे। यदि सामाजिक जीवन में व्यक्ति-व्यक्ति के बीच जन्म आधारित ऊँच-नीच बनी रहती है, तो संवैधानिक समानता भी अपने वास्तविक उद्देश्य को पूरी तरह प्राप्त नहीं कर सकती। इसलिए अंबेडकर का समानता संबंधी विचार सामाजिक अवसरों और सम्मान की समानता तक विस्तृत था। उनके लिए न्यायपूर्ण समाज वह था जिसमें किसी व्यक्ति के अधिकार और संभावनाएँ उसकी जाति या सामाजिक स्थिति से निर्धारित न हों (Ambedkar, 1945)।

अंबेडकर के चिंतन में बंधुत्व स्वतंत्रता और समानता को सामाजिक आधार प्रदान करता है। उनका मानना था कि केवल कानूनी प्रावधानों से समाज में वास्तविक एकता स्थापित नहीं की जा सकती। इसके लिए नागरिकों में परस्पर सम्मान और सह-अस्तित्व की भावना आवश्यक है। संविधान सभा में 25 नवंबर 1949 को दिए गए भाषण में उन्होंने स्वतंत्रता, समानता

और बंधुत्व को सामाजिक लोकतंत्र की आधारभूत शर्तों के रूप में प्रस्तुत किया (Ambedkar, 1949)। इस प्रकार उनके राजनीतिक चिंतन में नैतिकता और राजनीति का संबंध स्पष्ट दिखाई देता है।

अंबेडकर सामाजिक संस्थाओं और परंपराओं का मूल्यांकन तर्क और विवेक के आधार पर करने के पक्षधर थे। किसी व्यवस्था का केवल पुराना या प्रचलित होना उसके औचित्य का प्रमाण नहीं हो सकता। उसके मूल्यांकन का आधार यह होना चाहिए कि वह मनुष्य के साथ कैसा व्यवहार करती है और उसके व्यक्तित्व के विकास में किस प्रकार योगदान देती है। यही दृष्टिकोण उन्हें रुढ़ सामाजिक मान्यताओं की आलोचना करने की वैचारिक शक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार व्यक्ति की गरिमा, स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और विवेकशीलता उनके राजनीतिक चिंतन के दार्शनिक आधार को निर्मित करते हैं।

सामाजिक न्याय और मानव-मर्यादा

अंबेडकर के राजनीतिक चिंतन में सामाजिक न्याय का प्रश्न मानव-मर्यादा से सीधे जुड़ा हुआ है। उनके लिए समाज की प्रगति का मूल्यांकन केवल आर्थिक विकास या राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना से नहीं किया जा सकता। वास्तविक प्रगति तब मानी जा सकती है जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति सम्मान, अधिकार और अवसर के साथ जीवन जी सके। जिस व्यवस्था में व्यक्ति की सामाजिक स्थिति जन्म से निर्धारित होती हो और उसे समान मनुष्य के रूप में स्वीकार न किया जाए, वह व्यवस्था उनके लिए न्यायपूर्ण नहीं थी। इसी कारण सामाजिक असमानता के विरुद्ध उनका संघर्ष उनके व्यापक मानवतावादी राजनीतिक दृष्टिकोण का अभिन्न हिस्सा बना।

अंबेडकर ने जाति-व्यवस्था को सामाजिक विभाजन से अधिक गंभीर समस्या के रूप में देखा। उनके अनुसार जाति समाज में श्रेणीबद्ध असमानता को स्थायी बनाती है और व्यक्तियों के बीच समान सामाजिक संबंधों के विकास में बाधा उत्पन्न करती है। जाति व्यक्ति के अवसरों, सामाजिक संबंधों और सार्वजनिक जीवन में उसकी स्थिति को प्रभावित करती है। Annihilation of Caste में उन्होंने जाति के उन्मूलन को सामाजिक लोकतंत्र की दिशा में आवश्यक कदम माना (Ambedkar, 1936)। इसलिए जाति-विरोध उनके लिए किसी एक समुदाय के हित का प्रश्न नहीं, बल्कि समतामूलक समाज के निर्माण की आवश्यकता था। अस्पृश्यता के विरुद्ध अंबेडकर का संघर्ष इसी मानवीय दृष्टि का विस्तार था। किसी व्यक्ति को केवल जन्म के आधार पर सार्वजनिक संसाधनों, शिक्षा, सामाजिक संपर्क अथवा सम्मान से वंचित करना उसकी मूल मानवीय गरिमा का निषेध है। अंबेडकर ने दलित समुदायों के लिए समान नागरिक अधिकारों की माँग करते हुए इस बात पर जोर दिया कि उन्हें समाज के पूर्ण और सम्मानित सदस्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। उनके आंदोलन में अधिकारों की प्राप्ति के साथ आत्मसम्मान की पुनर्स्थापना का पक्ष भी प्रमुख था।

अंबेडकर सामाजिक न्याय को राजनीतिक लोकतंत्र से अलग नहीं करते थे। उनका मानना था कि यदि राजनीतिक क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति को समान मताधिकार प्राप्त हो, लेकिन सामाजिक और आर्थिक जीवन में गहरी असमानताएँ बनी रहें, तो लोकतंत्र की वास्तविक भावना कमजोर हो सकती है। संविधान सभा में उन्होंने इस विरोधाभास की ओर ध्यान आकर्षित किया कि राजनीतिक जीवन में समानता स्वीकार कर लेने के बावजूद सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता बनी हुई थी (Ambedkar, 1949)। इस प्रकार उनके लिए लोकतंत्र की सफलता सामाजिक न्याय की उपलब्धि से जुड़ी थी।

सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए अंबेडकर ने शिक्षा, प्रतिनिधित्व और समान अवसरों को महत्वपूर्ण साधन माना। लंबे

समय तक वंचित रहे समुदायों को केवल औपचारिक अधिकार देना पर्याप्त नहीं था; उन्हें निर्णय-प्रक्रिया और सार्वजनिक संस्थाओं में प्रभावी भागीदारी के अवसर भी मिलना आवश्यक था। What Congress and Gandhi Have Done to the Untouchables में उन्होंने राजनीतिक प्रतिनिधित्व को वंचित वर्गों के हितों की सुरक्षा से जोड़ा (Ambedkar, 1945)। इस प्रकार उनका सामाजिक न्याय संबंधी चिंतन कानून, प्रतिनिधित्व, शिक्षा और मानव-मर्यादा को एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में जोड़ता है।

लोकतंत्र की मानवीय अवधारणा

अंबेडकर के राजनीतिक चिंतन में लोकतंत्र केवल शासन करने की एक पद्धति नहीं है। वे इसे ऐसी सामाजिक व्यवस्था के रूप में देखते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को समान नागरिक के रूप में स्वीकार किया जाता है और उसे अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक स्वतंत्रता तथा अवसर प्राप्त होते हैं। इसलिए लोकतंत्र का मूल्यांकन केवल चुनावों, प्रतिनिधि संस्थाओं या सत्ता के हस्तांतरण के आधार पर नहीं किया जा सकता। उसके लिए यह भी आवश्यक है कि समाज के भीतर व्यक्ति-व्यक्ति के संबंध समानता और सम्मान पर आधारित हों।

अंबेडकर के लोकतंत्र संबंधी विचार में सामाजिक लोकतंत्र की अवधारणा विशेष महत्व रखती है। यदि सामाजिक जीवन में जन्म के आधार पर श्रेष्ठता और निम्नता बनी रहती है, तो राजनीतिक लोकतंत्र का आधार कमजोर हो जाता है। लोकतंत्र की संस्थाएँ तभी प्रभावी हो सकती हैं जब नागरिक एक-दूसरे के अधिकारों को स्वीकार करें और सामाजिक जीवन में समानता का व्यवहार करें। इस अर्थ में अंबेडकर लोकतंत्र को केवल राज्य की संरचना नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों की एक लोकतांत्रिक पद्धति के रूप में देखते हैं।

स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व उनके लोकतांत्रिक दर्शन के केंद्रीय तत्व हैं। इन मूल्यों को वे परस्पर निर्भर मानते थे। स्वतंत्रता व्यक्ति को अपने विचार और जीवन के संबंध में निर्णय लेने का अवसर देती है, समानता उसे समान नागरिक दर्जा प्रदान करती है और बंधुत्व सामाजिक संबंधों में पारस्परिक सम्मान को मजबूत करता है। संविधान सभा में अपने अंतिम भाषण में अंबेडकर ने सामाजिक लोकतंत्र को ऐसी जीवन-पद्धति के रूप में प्रस्तुत किया जो इन तीनों मूल्यों को स्वीकार करती है (Ambedkar, 1949)। इससे स्पष्ट होता है कि उनके लिए लोकतंत्र राजनीतिक प्रक्रिया के साथ नैतिक प्रतिबद्धता भी था।

अंबेडकर के लोकतांत्रिक चिंतन में राजनीतिक प्रतिनिधित्व का भी महत्वपूर्ण स्थान है। जिन सामाजिक समूहों को ऐतिहासिक रूप से निर्णय-प्रक्रिया से दूर रखा गया, उनकी समस्याओं को लोकतांत्रिक संस्थाओं में प्रभावी ढंग से सामने लाने के लिए प्रतिनिधित्व आवश्यक है। प्रतिनिधित्व का प्रश्न उनके लिए केवल राजनीतिक पदों की संख्या का विषय नहीं था, बल्कि समान नागरिकता और सार्वजनिक निर्णयों में सहभागिता से संबंधित था। इसी कारण उन्होंने वंचित समुदायों के राजनीतिक अधिकारों और प्रतिनिधित्व को लोकतांत्रिक व्यवस्था की प्रभावशीलता से जोड़ा (Ambedkar, 1945)।

लोकतंत्र के संबंध में अंबेडकर की मानवीय दृष्टि का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसमें नागरिक को केवल मतदाता के रूप में नहीं देखा जाता। नागरिक अधिकार, सम्मान, सहभागिता और स्वतंत्रता लोकतांत्रिक जीवन के आवश्यक घटक हैं। यदि राजनीतिक व्यवस्था व्यक्ति को अपनी क्षमता विकसित करने तथा सार्वजनिक जीवन में भाग लेने का अवसर नहीं देती, तो उसकी लोकतांत्रिक प्रकृति अधूरी रह जाती है। इस प्रकार अंबेडकर का लोकतंत्र व्यक्ति की गरिमा और सामाजिक सहभागिता को राजनीतिक संस्थाओं के साथ जोड़ता है।

संवैधानिकता, मौलिक अधिकार और व्यक्ति की स्वतंत्रता

अंबेडकर के राजनीतिक चिंतन में संविधान व्यक्ति की स्वतंत्रता और अधिकारों की संस्थागत सुरक्षा का प्रमुख माध्यम है। उनके लिए संविधान केवल शासन की विभिन्न संस्थाओं की संरचना निर्धारित करने वाला दस्तावेज नहीं था, बल्कि ऐसी व्यवस्था का आधार था जिसमें नागरिकों को राज्य और समाज दोनों के संभावित दमन से सुरक्षा प्राप्त हो सके। इसी कारण संवैधानिकता उनके मानवतावादी राजनीतिक चिंतन का महत्वपूर्ण आधार बनती है।

अंबेडकर की संवैधानिक दृष्टि में व्यक्ति की गरिमा को विशेष महत्व प्राप्त है। सामाजिक असमानता से प्रभावित भारतीय परिस्थितियों में वे नागरिक अधिकारों की सुरक्षा को केवल सामाजिक सद्भाव पर निर्भर नहीं छोड़ना चाहते थे। उनका विश्वास था कि अधिकारों को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त होना चाहिए ताकि सत्ता का मनमाना प्रयोग सीमित किया जा सके। States and Minorities में उन्होंने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा से संबंधित अनेक प्रस्ताव प्रस्तुत किए, जो उनकी अधिकार-केंद्रित दृष्टि को स्पष्ट करते हैं (Ambedkar, 1947)।

मौलिक अधिकारों की संवैधानिक व्यवस्था व्यक्ति को समान नागरिकता का आधार प्रदान करती है। समानता, स्वतंत्रता और भेदभाव के विरुद्ध संरक्षण जैसे अधिकारों का महत्व विशेष रूप से उन सामाजिक समूहों के लिए रहा है जिन्हें ऐतिहासिक रूप से असमान व्यवहार का सामना करना पड़ा। संविधान में अस्पृश्यता के उन्मूलन का प्रावधान इस दृष्टि से महत्वपूर्ण उदाहरण है। सामाजिक जीवन में प्रचलित अमानवीय व्यवहार को संवैधानिक और कानूनी रूप से अस्वीकार करना मानव-मर्यादा की रक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था (Constituent Assembly of India, 1949)।

अंबेडकर राज्य-सत्ता को आवश्यक मानते थे, लेकिन उसकी शक्ति को असीमित स्वीकार नहीं करते थे। संवैधानिकता का उद्देश्य शासन की शक्तियों को कानून के अधीन रखना और नागरिकों को मनमाने शासन से सुरक्षा प्रदान करना है। इस दृष्टि से विधि का शासन व्यक्ति और राज्य के बीच शक्ति-संतुलन स्थापित करता है। राज्य की वैधता केवल इस बात से निर्धारित नहीं होती कि वह कानून बनाता है, बल्कि इससे भी होती है कि वह नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं का कितना सम्मान करता है।

अंबेडकर ने संवैधानिक व्यवस्था की सफलता के लिए संवैधानिक नैतिकता को भी आवश्यक माना। संविधान में अधिकारों और संस्थाओं का उल्लेख अपने आप में पर्याप्त नहीं है; उन्हें व्यवहार में लागू करने के लिए राजनीतिक नेतृत्व, प्रशासन और नागरिक समाज में संविधान की भावना के प्रति प्रतिबद्धता आवश्यक है। संवैधानिक नैतिकता संस्थाओं की मर्यादा, कानून के पालन, असहमति के सम्मान और नागरिक अधिकारों की रक्षा की संस्कृति को मजबूत करती है (Ambedkar, 1949)।

इस प्रकार अंबेडकर की संवैधानिक दृष्टि व्यक्ति को राज्य के सामने अधिकार-संपन्न नागरिक के रूप में स्थापित करती है। संविधान, मौलिक अधिकार, विधि का शासन और संवैधानिक नैतिकता उनके राजनीतिक चिंतन में ऐसे साधन हैं जिनके माध्यम से लोकतांत्रिक राज्य को नागरिक-केंद्रित और न्यायोन्मुख बनाया जा सकता है। उनके लिए स्वतंत्रता केवल कानूनी अधिकार नहीं थी, बल्कि व्यक्ति के व्यक्तित्व-विकास की पूर्वशर्त थी। इसलिए संवैधानिक लोकतंत्र का अंतिम उद्देश्य ऐसी सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का निर्माण करना था जिसमें व्यक्ति सम्मान, स्वतंत्रता और समान अवसर के साथ जीवन जी सके।

महिला, श्रमिक एवं वंचित वर्गों के अधिकारों का मानवीय पक्ष

अंबेडकर के राजनीतिक चिंतन में मानवतावाद का दायरा केवल जातिगत असमानता के विरोध तक सीमित नहीं था। उनका व्यापक सरोकार उन सभी सामाजिक समूहों से था जिन्हें किसी न किसी रूप में अधिकारों, अवसरों और सम्मान से वंचित रखा गया था। महिलाओं, श्रमिकों तथा अन्य वंचित समुदायों से संबंधित उनके विचार इसी व्यापक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते हैं। उनके लिए सामाजिक न्याय का अर्थ ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना था जिसमें व्यक्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि उसके अधिकारों और जीवन की संभावनाओं को निर्धारित न करे। इस दृष्टि से उनका राजनीतिक चिंतन समान नागरिकता और मानवीय गरिमा की व्यापक अवधारणा से जुड़ा है।

महिलाओं की स्थिति के संबंध में अंबेडकर का दृष्टिकोण उनके सामाजिक सुधार संबंधी विचारों का महत्वपूर्ण पक्ष था। वे महिलाओं की शिक्षा, स्वतंत्रता और समान अधिकारों को सामाजिक प्रगति से जोड़कर देखते थे। उनका मानना था कि जिस समाज में महिलाओं को समान अवसर प्राप्त नहीं हैं, वहाँ सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना अधूरी रहेगी। विधायी स्तर पर हिंदू कोड बिल के माध्यम से विवाह, संपत्ति और पारिवारिक संबंधों में महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने का उनका प्रयास इसी सोच का परिणाम था। यद्यपि उस समय उनके प्रस्तावों को पर्याप्त राजनीतिक समर्थन नहीं मिल सका, फिर भी यह प्रयास महिलाओं को समान नागरिक अधिकार प्रदान करने की दिशा में उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है (Keer, 1971)।

अंबेडकर ने श्रमिकों के प्रश्न को भी सामाजिक न्याय के व्यापक संदर्भ में देखा। वे श्रमिकों को केवल उत्पादन प्रक्रिया का साधन नहीं, बल्कि अधिकारों और गरिमा से युक्त मनुष्य मानते थे। श्रम की परिस्थितियाँ, काम के घंटे, सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक संरक्षण जैसे विषय उनके सार्वजनिक जीवन के महत्वपूर्ण सरोकारों में शामिल रहे। उनके विचार में आर्थिक विकास का मूल्यांकन केवल उत्पादन और पूँजी की वृद्धि से नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि यह भी देखना आवश्यक है कि उससे श्रमिकों के जीवन में किस प्रकार का परिवर्तन आया है। इस दृष्टिकोण में श्रम की गरिमा और सामाजिक सुरक्षा मानवतावादी राजनीति के महत्वपूर्ण तत्व बन जाते हैं।

वंचित समुदायों की राजनीतिक भागीदारी अंबेडकर के चिंतन का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष है। वे मानते थे कि जिन समूहों को लंबे समय तक सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला, उनके हितों की प्रभावी रक्षा केवल सामान्य राजनीतिक आस्थाओं से नहीं हो सकती। निर्णय-प्रक्रिया में उनकी वास्तविक भागीदारी आवश्यक है। इसी कारण उन्होंने राजनीतिक प्रतिनिधित्व को सामाजिक न्याय और समान नागरिकता से जोड़ा। उनके लिए प्रतिनिधित्व केवल राजनीतिक पद प्राप्त करने का साधन नहीं था, बल्कि अपनी समस्याओं को स्वयं राजनीतिक मंच पर रखने और नीतिगत निर्णयों को प्रभावित करने का माध्यम था (Ambedkar, 1945)।

अंबेडकर के चिंतन में शिक्षा सामाजिक सशक्तीकरण का महत्वपूर्ण साधन थी। शिक्षा व्यक्ति को केवल जानकारी प्रदान नहीं करती, बल्कि उसमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता, आत्मविश्वास और आलोचनात्मक दृष्टि विकसित करती है। विशेष रूप से वंचित वर्गों के लिए शिक्षा सामाजिक गतिशीलता के नए अवसर खोल सकती है। इसी कारण अंबेडकर ने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से जोड़ा। उनका प्रसिद्ध आह्वान—“शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो”—व्यक्ति और समुदाय दोनों को अधिकार-चेतना तथा आत्मसम्मान की दिशा में प्रेरित करता है। आर्थिक असमानता के संबंध में भी अंबेडकर का दृष्टिकोण मानव-केंद्रित था। उनका मानना था कि अत्यधिक आर्थिक असमानता राजनीतिक लोकतंत्र को कमजोर कर सकती है,

क्योंकि अधिकारों का वास्तविक उपयोग तभी संभव है जब व्यक्ति के पास जीवन की आवश्यक परिस्थितियों और अवसरों तक पहुँच हो। States and Minorities में उन्होंने आर्थिक तथा सामाजिक अधिकारों की सुरक्षा से संबंधित विचार प्रस्तुत किए, जो यह स्पष्ट करते हैं कि उनके लिए राजनीतिक लोकतंत्र को आर्थिक न्याय से अलग नहीं किया जा सकता था (Ambedkar, 1947)। इस प्रकार महिलाओं, श्रमिकों और वंचित वर्गों के संबंध में अंबेडकर के विचार उनके मानवतावाद की व्यापकता को स्पष्ट करते हैं। वे सामाजिक न्याय को किसी एक समुदाय की समस्या न मानकर व्यक्ति के सम्मान, समान अवसर और अधिकार-संपन्न नागरिकता से जोड़ते हैं। उनके राजनीतिक चिंतन में कानून द्वारा अधिकारों की सुरक्षा के साथ सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन की आवश्यकता भी दिखाई देती है। यही कारण है कि उनका मानवतावादी दृष्टिकोण अधिकार, प्रतिनिधित्व, शिक्षा, आर्थिक सुरक्षा और सामाजिक सम्मान को एक समन्वित सामाजिक-राजनीतिक परियोजना के रूप में प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष

डॉ. भीमराव अंबेडकर के राजनीतिक चिंतन का मूल आधार मानव की गरिमा, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की स्थापना था। उनके लिए राजनीति केवल सत्ता प्राप्त करने या शासन-व्यवस्था संचालित करने का माध्यम नहीं थी, बल्कि सामाजिक विषमता और अन्याय को समाप्त कर एक न्यायपूर्ण समाज के निर्माण का साधन थी। उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता और सामाजिक बहिष्कार को मानवतावादी मूल्यों के विरुद्ध माना तथा वंचित वर्गों को समान अधिकार और सम्मान दिलाने के लिए निरंतर संघर्ष किया (Ambedkar, 1936; Jaffrelot, 2005)। उनका लोकतंत्र केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं था; वे लोकतंत्र को सामाजिक जीवन की ऐसी व्यवस्था के रूप में देखते थे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर और सम्मान प्राप्त हो।

अंबेडकर ने संवैधानिक व्यवस्था के माध्यम से व्यक्ति की स्वतंत्रता और अधिकारों को सुरक्षित करने पर विशेष बल दिया। मौलिक अधिकार, सामाजिक न्याय, समानता तथा प्रतिनिधित्व से संबंधित उनके विचार भारतीय लोकतंत्र को मानवीय आधार प्रदान करते हैं। महिलाओं, श्रमिकों, दलितों और अन्य वंचित समुदायों के अधिकारों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता उनके व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है (Ambedkar, 1947; Rodrigues, 2002)। वर्तमान समय में सामाजिक असमानता, भेदभाव और अधिकारों से जुड़ी चुनौतियों के बीच अंबेडकर के विचार और अधिक प्रासंगिक दिखाई देते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि अंबेडकर का राजनीतिक चिंतन लोकतांत्रिक भारत के लिए केवल ऐतिहासिक विरासत नहीं, बल्कि समानता, न्याय और मानवीय गरिमा पर आधारित समाज के निर्माण का सतत मार्गदर्शन है।

संदर्भ सूची

1. Ambedkar BR. Annihilation of caste. Independently Published, 1936.
2. Ambedkar BR. What Congress and Gandhi have done to the Untouchables. Thacker & Co., 1945.
3. Ambedkar BR. Who were the Shudras? How they came to be the fourth varna in the Indo-Aryan society. Thacker & Co., 1946.
4. Ambedkar BR. States and minorities: What are their rights and how safeguarded in the Constitution of free India. Government of India, 1947.
5. Ambedkar BR. The untouchables: Who were they and why they became untouchables? Amrit Book Co., 1948.
6. Ambedkar BR. The problem of the rupee: Its origin and its solution. Thacker & Co., 1948.

7. Ambedkar BR. Constituent Assembly debates (Vol. 11). Constituent Assembly of India, 1949.
8. Ambedkar BR. Thoughts on linguistic states. Thacker & Co., 1955.
9. Ambedkar BR. Buddha or Karl Marx. People's Education Society, 1956.
10. Ambedkar BR. The Buddha and his Dhamma. Siddharth College Publications, 1957.
11. Bakshi PM. The Constitution of India (16th ed.). Universal Law Publishing, 2019.
12. Constituent Assembly of India. Constitution of India. Government of India, 1949.
13. Gokhale BK. Dr. B. R. Ambedkar: The maker of modern India. National Publishing House, 1992.
14. Jaffrelot C. Dr Ambedkar and untouchability: Analysing and fighting caste. Permanent Black, 2005.
15. Joshi BR. Untouchable! Voices of the Dalit liberation movement. Zed Books, 1986.
16. Keer D. Dr. Ambedkar: Life and mission (3rd ed.). Popular Prakashan, 1971.
17. Kumar R. Ambedkar and social justice. Rawat Publications, 2018.
18. Omvedt G. Dalits and the democratic revolution: Dr. Ambedkar and the Dalit movement in colonial India. Sage Publications, 1994.
19. Omvedt G. Buddhism in India: Challenging Brahmanism and caste. Sage Publications, 2004.
20. Pai P. Dr. B. R. Ambedkar: The man and his vision. Neelkanth Prakashan, 2014.
21. Rodrigues V, ed. The essential writings of B. R. Ambedkar. Oxford University Press, 2002.
22. Sharma S. Ambedkar's political thought: A critical study. Concept Publishing Company, 2016.
23. Teltumbde A. Dalits: Past, present and future. Routledge, 2016.
24. Zelliot E. From untouchable to Dalit: Essays on the Ambedkar movement. Manohar Publishers & Distributors, 1992.